प्राचीन इतिहास संग्रह

[प्रथम भाग]

– ज्ञानसुंदर –

श्री जैन इतिहास-ज्ञान भानू किरण नं० १

श्रीरत्नप्रभसूरीश्वर पादपद्मेभ्योनमः

प्राचीन जैन इतिहास संग्रह

(प्रथम भाग)

[पाटलीपुर का इतिहास]

लेखक

मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज

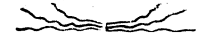

प्रकाशक

श्रीरत्न प्रभाकर ज्ञानपुष्प माला

मु० फलोदी (मारवाड़)

वीर सं० २४६१ | ओसवाल सं० २३९१ | वि० सं० १९९१

प्रथमावृत्ति १०००

प्रबन्धकर्त्ता
मास्टर भीखमचन्द
शिवगंज (सिरोही)

द्रव्य सहायक

श्रीसंघ–शिवगंज (सिरोही) श्रीमद्पंचमाङ्ग श्री भगवती सूत्र
प्रारंभ की ज्ञानपूजा के द्रव्य की आमद से

नथमल लूणिया द्वारा
आदर्श प्रेस, (केसरगञ्ज) अजमेर में छपा
संचालक—जीतमल लूणिया

प्राचीन जैन इतिहास संग्रह

(प्रथम भाग)

[पाटलीपुर का इतिहास]

आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेव प्रभु के शासन से नौवाँ तीर्थंकर श्री सुविधिनाथ प्रभु के शासन पर्यन्त तो विश्वधर्म जैन ही था। सारे प्राणी दयाधर्म की शीतल छाया में अपनी आत्मा का उत्थान कर परम शांति प्राप्त करते थे। नौवाँ तीर्थंकर सुविधि-नाथ स्वामी का शासन विच्छेद होने पर जैन ब्राह्मणों के मन में मलीनता का प्रादुर्भाव हुआ। स्वार्थ के वशीभूत हो कर उन ब्राह्मणों ने अपने ग्रन्थों में परिवर्तन करना शुरू किया। यहाँ तक कि जो जैन ब्राह्मणों के काम को सुचारुरूप से सम्पादन कराने के हेतु से भगवान ऋषभदेव स्वामी के आदेशानुसार भरत महाराज ने ४ आर्य वेदों का निर्माण किया था पर पिच्छेसे नकली ब्राह्मणों ने उन्हें असली रूप में नहीं रक्खा।

उपरोक्त वेदों को बनाने का परम पुनीत उद्देश्य तो यह था कि जैन ब्राह्मणलोग समाज को आचार, व्यवहार तथा संस्कार से सुधार कर सत्कार पावें, पर ब्राह्मणों ने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये

पूर्व विरचित वेदों में बहुतसा परिवर्तन कर दिया। इन शास्त्रों द्वारा जैन ब्राह्मणों ने समाज का असीम उपकार किया था। अतः वे सब विश्वासपात्र बन गये थे। इस विश्वासपात्रता के कारण मिले हुए अधिकार का उन्होंने बहुत बुरा उपयोग किया। ब्राह्मणों की इस अधम प्रवृति के कारण जनता का असीम उपकार होना रुक गया तथा झूँठा भ्रम अधिक जोरों से फैलने लगा। अपनी बात को परिपुष्ट करने के हेतु से उन्होंने कई नये आचार विचार सम्बन्धी कर्मकाण्डों का विधान भी किया। धर्म केवल एक संप्रदाय विशेष का रह गया। स्वार्थमय सूत्रों की रचना निरन्तर बढ़ती गई।

आखिर लोगों की धैर्यता जाती रही। अपने को भरमाया हुआ समझ कर लोगों ने शांति का साम्राज्य स्थापित करना चाहा "जहाँ चाह है वहाँ राह है" इस लोकोक्ति के अनुसार तीर्थंकर शीतलनाथ स्वामी ने अंधश्रद्धा को दूर करने का खूब प्रयत्न किया और अन्त में पूरी सफलता प्राप्त भी की। जनता को पुनः जैन धर्म को अच्छी तरह पालने का अवसर प्राप्त हुआ। ढोंगियों की पोल खुल गई तथा लोगों को सच्चा रस्ता फिर से मालूम हो गया। किन्तु यह शांति चिरस्थाई न रही। ज्योंही शीतलनाथ प्रभु का निर्वाण हुआ ब्राह्मणों ने पुनः उसी मार्ग का अनुसरण किया। ब्राह्मणों का आधिपत्य खूब बढ़ा। एवं श्रीयांसनाथ वासपूज्य, बिमलनाथ, और अनंतनाथ भगवान् के शासन काल में धर्म का उद्योत और अन्तरकाल में ब्राह्मणों का जोर बढ़ता रहा तत्पश्चात् भगवान धर्मनाथ स्वामी के शासन में फिर लोगों ने सुमार्ग का अनुसरण किया। किन्तु फिर मिथ्यात्व ने जोर पकड़ा

और स्वार्थियों की बन पड़ी। भोले लोग खूब भटकाए गये। किन्तु अन्त में मिथ्यात्वियों की पूर्ण पराजय हुई और सोलहवें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ स्वामी के शासनकाल में पूर्ण शान्ति स्थापित हो गई। किसी भी प्रकार का दूषित वातावरण नहीं रहा। यह शांति चिरकाल तक रही। दिन व दिन धर्म की उन्नति होती रही और दशा यहाँ तक अच्छी हुई कि बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी के शासनकाल में अहिंसा धर्म की पताका सारे विश्व में फहराने लगी। इस झंडे के नीचे रह कर मानव समाज प्रचुर सुख अनुभव कर उसे पूर्ण तरह से भोगने लगे।

मुनिसुव्रत स्वामी ने भडूच में अश्वमेध यज्ञ बंद करा कर एक अश्व की रक्षा की थी अतः वह तीर्थ अश्वबोध नाम से कहलाने लगा तथा वह आज तक इसी नाम से विख्यात है। किन्तु यह उत्थान भी पराकाष्टा तक पहुँच कर फिर अवनत होने लगा। बीसवें और इक्कीसवें तीर्थंकर के शासन के अन्तःकाल में पुनः ब्राह्मणों का जोर बढ़ा। महाकाल की सहायता से पर्वत जैसे पापात्माओं ने पशु बलि जैसे निष्ठुर यज्ञयाज्ञादि का प्रचुर प्रचार कर जनता को आमिषभोजी बनाया। मदिरा का भी प्रचार माँसभक्षण के साथ बढ़ा। मूकपशु, यज्ञ की वेदियो पर मारे जाने लगे। पशुओं की हत्याओं से भूमि रक्त रंजित हो गई। शोणित का प्रवाह धरणी पर प्रवाहित होने लगा। रक्त की नदियाँ सब प्रान्तों में बहने लगी। नदियों के नाम भी रक्तानदी तथा चर्मानदी पड़ गये। इस समय जैन सम्राट रावण ने इस हत्या को रोकने के लिये कई यज्ञों को रोका तथा यज्ञ कर्त्ताओं को खूब दण्ड भी दिया। यही कारण था कि ब्राह्मणों ने रावण

को राक्षस बताया तथा उसे अपमानित करने के सैकड़ों उपाय किये। रावण के वंश को भी उन्होंने राक्षस वंश ठहरा दिया, पर रावण तो जैनी था। रावण जैन धर्म के नियमों का पालन करने में किसी भी प्रकार की त्रुटि नहीं करता था। रावण ने अष्टापद पर जिन मन्दिर में नाटक किया था। उसने शांतिनाथ भगवान के मन्दिर में सहस्र विद्या सिद्ध की थी। वह नित्य जिन मन्दिर में जाकर पूजा किया करता था। उसके समकालीन दशरथ, राम, लक्ष्मण, भरत, वाली, सुग्रीव, पवन और हनुमान आदि बड़े बड़े जैनी सम्राट् हुए हैं जिन्होंने यज्ञ की हिंसा को उठाने का खूब प्रयत्न किया था। लोगों को हिंसा से घृणा होने लगी। यज्ञ की निर्दयी और निष्ठुर बाधिक लीलाऐं दूर हुई। फिर एक बार अहिंसा धर्म का सार्वभौमिक प्रचार हुआ।

इक्कीसवें तीर्थंकर श्री नमिनाथ के शासन में जैन धर्म्म का खूब अभ्युदय हुआ। बड़े बड़े राजा और महाराजा जैन धर्म के उपासक थे। जिनालय जगह जगह पर मेदिनी को मण्डित कर रहे थे। गौड देश वासी एक आसाढ़ नामक सुश्रावकने एक देवता की सहायता से रावण परिपूजित अष्टापद तीर्थ की यात्रा करते हुए कई जिनालय बनवाए। मन्दिर बनवाने में उसने अपना सारा न्यायोपार्जित द्रव्य लगा दिया। उसने उन मन्दिरों में जिन जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा कराई थी उनमें से तीन मूर्त्तियाँ तो आज पर्यन्त विद्यमान हैं। उन मूर्त्तियों पर खुदा हुआ लेख इस बात का सबूत दे रहा है कि इन मूर्तियों की प्रतिष्ठा कराने वाला आशाढ़ नामक एक श्रावक था। इसी प्रकार चारों ओर उस समय जैन धर्म्मका अपूर्व अभ्युदय हो रहा था।

सूर्य के अस्त होने पर अंधकार का सम्राज्य हो ही जाता है इसी प्रकार सदुपदेश के अभाव में मिथ्यात्व का अधिकार हो जाता है। इसी सिद्धांतानुसार नमिनाथ स्वामि के पश्चात् भी ब्राह्मणों का थोड़ा बहुत जोर बढ़ा ही था। अन्त में बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमीनाथ का अवतार हुआ। आपके पिता का नाम समुद्रविजय था। श्री कृष्णचन्द्र, वासुदेवजी के पुत्र थे अतएव नेमिनाथजी के भाई थे। जिस वंश के अन्दर ऐसे ऐसे महात्माओं ने जन्म लिया हो वह वंश यदि उन महात्माओं का अनुयायी हो तो इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं। उस समय के जैन योद्धा समुद्रविजय, वासुदेव, श्रीकृष्णचन्द्र, बलभद्र, महावीर, कौरव, पाण्डव, और सांबप्रद्युम्न आदि ब्राह्मणों के हिंसामय कृत्यों का विरोध करते थे। यज्ञ की वेदी पर होने वाली हिंसा रोकी गई। सारे संसार में अहिंसा धर्म का प्रचार हुआ। क्या आर्य और क्या अनार्य सब मिलकर सोलह हजार देशों में जैन धर्म्म की पताका फहराने लगी। तत् पश्चात् पार्श्वनाथ स्वामी का शासन प्रारम्भ हुआ। आप काशी नरेश महाराजा अश्वसेन की रानी वामा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। आपकी बुद्धि बाल्यावस्था ही में इतनी प्रखर थी कि आपने कमठ जैसे तापस की खूब खबर ली। उस तापस को धूनी में से जलते हुए नाग को निकाल कर नमस्कार मंत्र सुनाकर धरणीन्द्र की पदवी देनेवाले आप ही थे। पार्श्वनाथ स्वामी ने दीक्षा लेकर कैवल्य ज्ञान प्राप्त किया था। आपका धर्मचक्र विश्वव्यापी बन गया था।

बड़े बड़े राजा और महाराजा आपके चरण कमलों का स्पर्श कर अपने को अहोभागी समझते थे तथा आपकी सेवा

में सदा निरत रहते थे। उग्र भोग इक्ष्वाकु और राजन् कुल के तथा सेठ साहुकारों के १६००० मनुष्य पार्श्वनाथ स्वामी के पवित्र चरण कमलों में दीक्षान्वित हुए थे! आपके पास दीक्षित हुई ३८००० साध्वियाँ महिला समाज को सदुपदेश सुनाकर धर्म्म का उज्ज्वल मार्ग प्रदर्शित करतीं थी। जैन तीर्थंकरों में श्री पार्श्वनाथ स्वामी का नाम ही खूब प्रख्यात है। और यंत्र तथा मंत्र भी पार्श्वनाथ स्वामी के नाम से अधिक हैं। अर्वाचीन समय में भी अधिकतर जैनेतरों को पार्श्वनाथ स्वामी का ही परिचय है।

पार्श्वनाथ स्वामी ने विहार विशेषतया काशी, कौशल, अंग, बंग, कलिंग, जंगल और कोनाल आदि प्रान्तों में किया था। उपरोक्त प्रान्तों अंग, बंग, मगध और कलिंग देश में आपने विशेष उपदेश देकर जैन धर्म का खूब अभ्युदय किया था। इसका यह प्रमाण है कि कलिंग देश के अंतर्गत उदयगिरि पहाड़ी की हांसीपुर गुफा में आपका जीवनचरित शिलालेख के रूप में अब तक भी विद्यमान है। यह पहाड़ भी कुमार तीर्थ के नाम से आज लों प्रख्यात है। आपकी शिष्य मण्डली ने भी उसी प्रान्त में अधिक विहार किया होगा ऐसा मालूम होता है।

भगवान् पार्श्वनाथ के निर्वाण के बाद फिर यज्ञवादियों का हौंसला बढ़ने लगा, और धीरे धीरे उन्होंने कई राजा महाराजों पर भी अपना प्रभाव डाला। इधर पार्श्वनाथ भगवान के पट्ट पर उनके गणधर शुभदत्ताचार्य नियुक्त हुए। आपने अपने आज्ञा वृति साधुओं को प्रत्येक प्रान्तों में भेज भेज कर अहिंसा परमोधर्मः का जोर शोर से प्रचार किया। इस पवित्र कार्य में आपने आशा-

तीत सफलता भी प्राप्त की। आपके पद पर आचार्य हरिदत्तसूरि बड़े ही प्रभावशाली हुए उन्होंने यज्ञ वादियों के जाल को हटाने में खूब ही परिश्रम किया। एक समय आप स्वस्ति नगरी में पधारे वहाँ वेदान्तिक लोहित्याचार्य और साथ में उनके ५०० शिष्यों को दीक्षा दी। उन्होंने शास्त्राभ्यास करने के बाद महाराष्ट्रिय प्रान्त में धर्म प्रचार निमित्त बिहार किया और यज्ञादि में मूक् प्राणियों की होती हुई घोर हिन्सा को खूब जोरों से रोका और वहाँ के निवासियों को अहिंसा परमोधर्म और स्याद्वाद की शिक्षा देकर जैनधर्मी बनाये उनके आत्म कल्याणार्थ जिनालय और मूर्त्तियों की प्रतिष्ठा भी करवाई। आपकी आज्ञावृति बहुत से साधुओं ने चिर-काल तक उस प्रान्त में बिहार कर जैन धर्म को राष्ट्रीय धर्म बना दिया। आपके पद पर आर्य समुद्रसूरि हुए आप भी धर्म प्रचा-रक वीर थे वेदान्तियों की हिंसा रोकने में आपने भरसक प्रयत्न किया और आपने कई अन्य प्रथाए में बहुत कुछ सुधार करवाया। तथापि यज्ञवादियों का वेग कई कई प्रान्तों में बढ़ता ही गया। आपके पद पर श्रीमान् केशीश्रमणाचार्य महान् प्रभाविक और अद्वितीय धर्म प्रचारक हुए आप उज्जैन नगरी के बाल ब्रह्मचारी राजकुमार थे। बाल्यावस्था में आपने माता पिता के साथ जैन दीक्षा ग्रहण की थी। ज्ञानाभ्यास और पूर्ण योग्यता हासिल कर आचार्य पद प्राप्त किया आपने अनेक राजामहाराजा को अहिंसा का उपदेश देकर जैन बनाया। इतना ही नहीं पर श्वेताम्बिका नगरी का नास्तिक शिरोमणि राजा प्रदेशी को भी आपने प्रतिबोध कर जैन धर्म का परम उपासक बनाया एवं आपके आज्ञावृति हजारों मुनि प्रत्येक प्रान्त में विहार कर जैन धर्म का प्रचार कर रहे थे। इधर यज्ञ हिंसा के

सामने एक दल सन्यास के रूप में खड़ा हुआ और यह सख्त विरोध करता था।

इधर कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन के बुद्ध नामक राजकुमार ने जैनाचार्य पेहित मुनि के पास जैन दिक्षा ली, और बहुत अर्से तक तपश्चर्या की पर बाद में उनका दिल तपश्चार्य से हटगया और अकेला ही रहने लगा, इसके बाद इन्होंने अपने नाम से बोध धर्म चलाया। यद्यपि बोध ग्रन्थों में स्पष्टरूप में यह उल्लेख नहीं मिलता है कि बुद्ध ने जैन दीक्षा ली थी। तथापि इस बात को सिद्ध करने में थोड़े बहुत प्रमाण मिल भी सकते हैं।

(१) श्वेताम्बर समुदाय का आचारांग नामक सूत्र की शिलांगा चार्य कृत टीका में लिखा है कि बुद्ध ने पहले जैन दीक्षा ली थी।

(२) दिगम्बर समुदाय का दर्शनसार नामक ग्रन्थ में भी यही लिखा है।

(३) बुद्ध ग्रन्थों में बुद्ध का भ्रमण समय का उल्लेख करता "महा नियठी" ग्रन्थ में लिखा है कि एक समय बुद्ध "सुपास" वस्ति में ठेहरा था इस से यही सिद्ध होता है कि बुद्ध प्रारम्भ समय में जैन था और जैनों के सातवाँ तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ के मन्दिर में ठैरा था।

(४) बुद्ध ने अपने धर्म में जो अहिंसा को प्रधान स्थान दिया है यह भी जैन धर्म की असर का ही परिणाम है।

(५) बुद्ध ने आत्मा को क्षीणक भाव मानी है जो जैन सिद्धान्त में "द्रव्य गुण पर्याय" द्रव्य सास्वता और पर्याय समय समय बदलता है तो बुध ने द्रव्य को पर्याय

समझ आत्मा को क्षणिक भावी मानी है। पूर्वोक्त कारणों से वेदान्तियों ने जैन और बोद्ध को एक ही समझ के कई जगह जैनों को बोध ही लिख मारा है बुद्ध का समय ठीक केशीश्रमणाचार्य का शासन का ही समय था भगवान महावीर के समकालीन बुद्ध हुआ है महावीर की आयुष्य ७२ वर्ष की जब बुद्ध की आयुष्य ८० वर्ष की थी। महावीर से दो वर्ष पहले बुद्ध का जन्म हुआ और महावीर के निर्वाण के बाद ६ वर्ष पीछे बुद्ध का निर्वाण हुआ भगवान महावीर का और बुद्ध का यज्ञ हिंसा के सामने विरोध और अहिंसा प्रचार का प्रयत्न बाह्य दृष्टि से मिलता जुलता ही था इसलिये वेदान्ति लोग दोनों को अपने प्रतिपक्षी ही समझते थे खैर।

केशी श्रमणाचार्य ने अपने आज्ञावर्ती मुनियों को देश प्रदेश में भेज भेज कर ब्राह्मणों बोद्धों के चंगुल से अनेक प्राणियों को बचा कर जैनधर्मी बनाया और शिष्यों को अन्योन्य प्रान्त में भेज कर आपने स्वयं अंग, बंग और मगध देश में रह कर जैन धर्म की उन्नति करने में अटूट परिश्रम किया। तथापि प्रकृति एक महापुरुष की और कमी अनुभव करती थी। प्रतीक्षा एक ऐसे व्यक्ति की थी जो शान्ति का साम्राज्य स्थापित कर धार्मिक क्षेत्र में मची हुई क्रांति को मिटा दे। उस समय की दशा भी विचित्र थी। पारस्परिक प्रतिद्वंदता का जमाना द्वेष को फैला रहा था। एक ओर वेदान्ति लोग यज्ञ आदि में पशु हत्या पर तुले हुए थे तो दूसरी ओर बुद्धलोग अहिंसा धर्म्म का उपदेश देते हुए भी मांस मदिरा के प्रयोग से बचे हुए नहीं थे।

तीसरी ओर जैनमुनि अहिंसा का उपदेश तो करते थे पर उनके गृहक्लेश और शिथिलता के कारण उपदेश का पूरा प्रभाव नहीं पड़ता था। केशी श्रमणाचार्य ने जैन मुनियों को समझा बुझा कर तत्कालीन समय की दशा का विस्तृत वर्णन किया तथा उन्हें सचेत कर जैन धर्म्म का उत्थान करने के लिए उत्साहित किया।

ठीक आवश्यकता के समय भगवान् महावीर स्वामी का शासन प्रारम्भ हुआ। फिर किस बात की कमी थी। जगदुपकारी भगवान् महावीर ने अपनी बुलन्द आवाज से तथा दिव्य शक्ति द्वारा चारों ओर शान्ति फैलाई। आपने बाल्यावस्था से ही तत्वज्ञान से पूर्ण परिचय प्राप्त कर लिया था। आप का मुख्य ध्येय आत्मकल्याण करना था। अहिंसा धर्म्म का प्रचार करना ही आपका पवित्र उद्देश्य था। "सब जीवों के प्रति प्रेम रखना" यही आपके उपदेश का सार था। बस इसी मंत्र का सारे विश्व पर प्रभाव पड़ा। जाति के बन्धनों को तोड़ कर आपने उच्च और नीच का झगड़ा मिटा दिया। आत्मकल्याण की उज्जवल भावना से प्रेरित हो १४००० मुनि एवम् ३६००० आर्याओंने आप के चरणों की शरण ली थी।

लाखों नहीं वरन् क्रोड़ों की संख्या में जैनोपासक दृष्टिगोचर होने लगे। वेदान्तियो का समुदाय लुप्तसा हो गया। जैनधर्म के प्रताप रूपी सूर्य के आगे बोद्धों का समुदाय उडुगण की तरह फीका नजर आने लगा। थोड़े ही समय में प्रायः सारा भारत जैन धर्म्म की पताका के नीचे आ गया। विशाला का चेटक नरेश, राजगृही का श्रेणिकभूप, कौणिकभूपति, नौलच्छिक,

नौमलिक अठारेगण राजा, सिन्धु सौवीर का महाराजा उदाई, उज्जैन का नृपति चण्डप्रद्योतन, दर्शनपुर का नरेश दर्शनभद्र, पावापुरी का नरपति हस्तपालराज, पोलासपुर का नरेन्द्र विजयसेन, काशी का धर्म्मशील सावत्थीका अदितशत्रु, सांकेतपुर का धर्मधरन्धर महाराजा मित्रानन्द, अमलकम्पा का राजा स्वेत, क्षत्रिकुण्ड का महाराजा नंदीवर्धन, कौसुम्बीपति उदाई, कपिलपुर का भूपति यमकेतु, श्वेताम्बका का नरेश प्रदेशी और कलिंग का अधिपति महाराज सुलोचन ये सब जैन धर्म्म के प्रचार में पूर्णतया संलग्न थे।

आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव से लगा कर अंतिम तीर्थंकर महावीर प्रभु के शासन काल तक चक्रवर्ती, वासुदेव प्रतिवासुदेव, बलदेव, मण्डलिक, महामण्डलिक आदि सब सदाशय एवं महापुरुष परम श्रद्धालु जैनधर्मावलम्बी थे। इनका ऐतिहासिक वर्णन यदि किसी को मालूम करना हो तो कलिकाल सर्वज्ञ भगवान् हेमचन्द्राचार्य महाराज विरचित "त्रिषष्टिशलाक पुरुषचरित्र" नामक बृहद्ग्रन्थ को देखो। प्राचीन इतिहास सिवाय जैन ग्रंथों के और कहीं भी नहीं पाया जाता। भगवान् पार्श्वनाथ और महावीरस्वामी के इतिहास की सामग्री तो विस्तृत रूप में उपलब्ध हो चुकी है। इतना ही नहीं पर बावीसवें तीर्थंकर भगवान् नेमीनाथ स्वामी को भी ऐतिहासिक पुरुष मानने को अर्वाचीन इतिहासज्ञ तैयार हैं। ज्यों ज्यों अधिक खोज होगी त्यों त्यों जैन ग्रन्थों का विषय ऐतिहासिक प्रमाणित हो कर सार्वजनिक प्रकाश में आता रहेगा।

भगवान श्री महावीर स्वामी के पीछे का जो इतिहास उपलब्ध हुआ है उस में अधिकाँश पाटलीपुत्र नगर का ही वृतान्त

वर्णित है। कारण इस प्रदेश में जितने नृपति हुए सब के सब ऐतिहासिक राजा हैं। अतएव यहाँ पर पाटलीपुत्र के राजाओं से ही ऐतिहासिक वर्णन बताया जायगा किन्तु इस से पहिले के श्रेणिक और कौणिक नरेश का थोड़ा हाल दिखा देना असंगत नहीं होगा।

यह वर्णन उस समय का है जब कि मगधदेश का राज-मुकुट शैशुवंशीय महाराजा प्रश्नजित के मस्तक पर शोभायमान था। राजा प्रश्नजित के १०० पुत्र थे राजा ने अपना राज्य जेष्ट पुत्र को बिना परीक्षा किये न देने का विचार कर सब पुत्रों की कुशलता की परीक्षा लेनी चाही। इस परीक्षा में जो सर्वोपरी उत्तीर्ण होगा वही मेरा उत्तराधिकारी एवं राज्य का अधिकारी होगा, ऐसा राजा का आदेश एवं मन्तव्य था। अनेक प्रकार से परीक्षा करने से ज्ञात हुआ कि श्रेणिक कुमार राजा होने के लिए सर्व गुण युक्त है फिर राजा ने दूरदर्शिता से सोचा कि यदि श्रेणिक यहीं पर रहेगा तो न मालूम शेष पुत्रों में से कौन राज्य की लालसा से उपद्रव कर बैठे। इसी हेतु एक बार बगीचे में श्रेणिक का ऐसा अपमान किया गया कि श्रेणिककुमार देश छोड़ कर भाग गया। जब श्रेणिक देश से भग कर जा रहा था तो रास्ते में उसे बौद्ध भिक्षुओं से भेंट हुई श्रेणिक रात्रि के समय बौद्धों के मठ में ही ठहरा तथा उसने आपबीती सब को कह सुनाई।

बौद्धों ने श्रेणिक को कहा कि यदि तुम्हें राज्य प्राप्त करने की आंकाक्षा है तो भगवान् बौद्ध पर विश्वास रक्खो। बोद्धधर्म पर श्रद्धा रखने से तुम्हें अवश्य राज्य प्राप्त होगा पर उस दशा में तुम बोद्ध धर्म का प्रचार करोगे तथा इस धर्म को स्वयं भी

स्वीकार करलोगे, ऐसी प्रतिज्ञा इस समय करो। श्रेणिक ने यह बात स्वीकार करली। प्रातःकाल होते ही श्रेणिक वहाँ से चल पड़ा। चलते चलते वह बेनातट नगर में पहुँचा। वहाँ धनवहा सेठ की कन्या नन्दा से उसका विवाह हो गया। विवाह होने पर वह उसी नगर में रहने लगा। उधर प्रश्नजित राजा सख्त बीमार हुआ। वह मृत्युशय्या पर पड़ा पड़ा अपने पुत्र श्रेणिक की प्रतीक्षा कर रहा था। देवानन्द नामक सार्थ-वाह ने आकर समाचार दिया कि श्रेणिक बेनावट नगर में रहता है। पिताने अपने अनुचरों कों भेज कर श्रेणिक को बुलाया। नन्दा गर्भवती थी। पर श्रेणिक ने अपने पिता की आज्ञा को टालना उचित नहीं समझा। श्रेणिक बड़ी सेना को लेकर राजगृह पहुँचा। प्रश्नजित ने सब के समक्ष श्रेणिक को राज्याभिषेक कर राजगृह (मगध) का राज उस के सुपुर्द कर दिया। प्रश्नजित नरेश नमस्कार मंत्र का आराधन करता हुआ देह त्याग स्वर्ग की ओर सिधारा।

श्रेणिक राजा ने राजगद्दी पर बैठते ही बोद्ध भिक्षुकों को बुलाया तथा बौद्ध धर्म स्वीकार कर उसके प्रचार का कार्य भी करने लगा। बौद्ध ग्रंथों में श्रेणिक का नाम बिम्बसार लिखा हुआ पाया जाता है। जैन ग्रंथों में भी श्रेणिक का दूसरा नाम ये ही लिखा हुआ मिलता है। श्रेणिक राजा के कई रानियाँ थीं उनमें से एक का नाम चेलना था। चेलना विशाला नरेश चेटक की पुत्री थी तथा जैनधर्म की परमोपासिका थी। राजा तो बौद्ध था तथा रानी जैन थी। अतएव सदा धर्म विषयक वाद विवाद चलता रहता था। धर्म की अन्धश्रद्धा के वशीभूत हुए श्रेणिक ने जैन धर्म के

प्रचारक मुनियों पर दोषारोपण भी किये। वह सदा मुनियों के आचार पर आक्षेप भी किया करता था पर रानी चेलना भी किसी प्रकार कम नहीं थी। उसने बौद्ध भिक्षुकों को लम्बे हाथ लिया। पर अन्त में अनाथी मुनि के प्रतिबोध से श्रेणिक राजा की अभिरुचि जैनधर्म की ओर हुई। महावीर भगवान ने इस अभिरुचि को परम श्रद्धा के रूप में पुष्ट कर दिया। कई देवता आकर श्रेणिक के दर्शन को डिगाने लगे पर उनका प्रयत्न विफल हुआ।

फिर क्या देरी थी ? राजा श्रेणिक ने अपने राज्य में ही नहीं पर भारत के बाहर अनार्य देशों में भी जैनधर्म का प्रचार करना प्रारम्भ किया। महाराजा श्रेणिक के नंदा रानी का पुत्र अभयकुमार ने अनार्य देश में आर्द्रकपुर नगर के महाराज कुँमार आर्द्र के लिये भगवान् ऋषभदेव का मूर्त्ति भेजी थी। इस मूर्त्ति के दर्शन से आर्द्रकुमार ने ज्ञान प्राप्त कर जैनधर्म की दीक्षा ले अनार्य देश में भी जैनधर्म का खूब प्रचार किया था। राजा श्रेणिक नित्यप्रति १०८ सोने के जौ (अक्षत) बनाकर प्रभु के आगे स्वस्तिक बना चौगति की फेरी से बचने की उज्ज्वल भावना किया करता था। यह नृपति जैनधर्म का प्रसिद्ध प्रचारक हुआ है। श्रेणिक नरेश ने कलिङ्ग देश के अन्तर्गत कुमार एवं कुमारी पर्वत पर भगवान् ऋषभदेव स्वामी का विशाल रम्य मन्दिर बनवा कर उसमें स्वर्ण मूर्ती की प्रतिष्ठा करवाई थी। इसके अतिरिक्त उसने उसी पर्वत पर जैन श्रमणों के हित बड़ी बड़ी गुफाओं का निर्माण भी कराया था। इसी अपूर्व और अलौकिक भक्ति की उच्च भावना के कारण आगामी चौबीसी में श्रेणिक नृपति का जीव पद्मनाभ नामक प्रथम तीर्थंकर होगा।

महाराजा श्रेणिक बौद्ध अवस्था में शिकार करते समय अधोगति का आयुष्य बांध चुके थे अतः वे स्वयं तो दीक्षा नहीं ले सके किन्तु जो कोई दूसरा दीक्षा लेना चाहता था ता उसे वे रोकते नहीं थे वरन् उसे सहयोग दे कर उसका उत्साह द्विगुणित करने में कभी नहीं चूकते थे। इस सुविधा को देख कर राजा श्रेणिक के पुत्र तथा प्रपुत्र जालीकुमार, मयाली, उवायाली, पुरुषसेन, महासेन, मेघकुमार, हल, विहल और नन्दीसेन आदि ने एवम् नन्दा, महान्दा, सुनन्दा और काली, सुकाली आदि रानियों ने भगवान् महावीर प्रभु के पास दीक्षा ली। इस प्रकार जैनधर्म का उत्थान श्रेणिक के शासनकाल में खूब हुआ।

महाराजा श्रेणिक के बाद मगध का राज्यमुकुट श्रेणिक से उतर कर उसके पुत्र कौणिक के सिर पर चमकने लगा। वह बड़ा ही वीर था। कौणिक राजा ने अपनी राजधानी चम्पा नगरी में कायम की। बौद्ध ग्रंथों में कौणिक नरेश अजातशत्रु के नाम से प्रसिद्ध है। कहीं कहीं बौद्ध ग्रंथों में इसका नाम बौद्धधर्म्मी राजाओं की परिगणना में आता है। कदाचित् कौणिक पहिले थोड़े समय के लिये बौद्धधर्म्मी रहा हो पर यह सर्वथा सिद्ध है कि पीछे से वह अवश्य जैनी हो गया था। उसने जैनधर्म की खूब उन्नति भी की। कौणिक नरेश ने पूर्ण प्रयत्न करके अनार्य देशों तक में जैनधर्म का प्रचार कराया था। महाराजा कौणिक का यह प्रण था कि जबलों मुझे यह संवाद नहीं मिले कि महावीर स्वामी कहाँ विहार कर रहे हैं मैं भोजन नहीं करूंगा। महाराजा कौणिक बड़े शूरवीर एवं प्रबल साहसी थे। हार हस्ती के लिये वीर कौणिक नरेश ने महाराजा चेटक से बारह वर्ष पर्यन्त

युद्ध कर अन्त में पराजित कर विजय का डंका बजाया था। इतना ही नहीं पर उसने सारे भारत को अपने अधीन कर सम्राट् की उपाधि प्राप्त की थी। जैन ग्रंथों में कौणिक नरेश का इतिहास बहुत विस्तार पूर्वक लिखा हुआ है।

महाराजा कौणिक के पीछे मगधराज्य की गद्दी पर उसका पुत्र उदाई सिंहासनारूढ़ हुआ। इसने अपनी राजधानी पाटलीपुत्र में रक्खी। वैसे तो मगध के सारे राजा जैनी हुए हैं पर इसके शासन काल में जैनधर्म ने उन्नति की और अधिक प्रवाह से प्रगति करने लगा। "यथा राजा तथा प्रजा" लोकोक्त के अनुसार जनता भी जैनधर्म की अनुयायिनी बनी। दूसरी ओर वेदान्तियों और बोद्धों का जोर भी बढ़ रहा था। तथापि जैनाचार्य साबित कदम थे। स्याद्वाद सिद्धान्त और अहिंसा परमोधर्म के आदर्श के आगे मिथ्यात्वियों की कुछ भी नहीं चलती थी। राजा उदाई तो राज्य की अपेक्षा धर्म का विशेष ध्यान रखा करता था। इसकी इस कदर प्रवृति देख कर विधर्म्मियों के पेट में चूहे कूदने लगे। उन्होंने एक अधम्म निर्दय किसी आदमी को धार्मिक द्वेष में अंधे हो कर जैन मुनि के वेष में उदाई के पास भेज।। उस द्वेषी ने जाकर छल से उदाई का वध कर शैशु नाग वंश का ही अन्त कर दिया।

शैशु नाग वंशियों के पश्चात् मगध देश का राज्य नंद वंश के हस्तगत हुआ। पाटलीपुत्र की राजधानी में नंदवर्धन राजा सिंहासनारूढ़ हुआ। पहले यह ब्राह्मण धर्मी था। कदाचित् इसी ने षटयंत्र रच महाराज उदाई का वध कराया हो। इस नृपति ने वेदान्त मत का खूब प्रचार किया। वह जैन और बौद्ध मत

का कट्टर विरोधी था। मरणोन्मुख होते हुए ब्राह्मण धर्म को इसी नरेश ने जीवन प्रदान किया था। तथापि जैन और बौद्धों का जोर कम नहीं हुआ। शायद पिछली अवस्था में जैन मुनियों के समागम से उसने जैनधर्म स्वीकार कर लिया हो और जैन धर्म का प्रचार किया हो इतिहास से ऐसा मालूम होता है। इतिहास से विदित होता है कि मगध की गद्दी पर नंद वंश के नौ राजाओं ने राज्य किया है। वे नंदवंशी सब राजा जैनी थे इसका प्रमाण देखिये— Smith's Early History of India Page 114. में और डाक्टर शेषागिरिराव ए. ए. एण्ड ए आदि मगध के नंद राजाओं को जैन लिखते हैं क्योंकि जैनधर्मी होने से वे आदीश्वर भगवान की मूर्ति को कलिङ्ग से अपनी राजधानी में ले गये थे। देखिये South India Jainism Vol. II Page 82.

महाराजा खारवेल के शिलालेख से स्पष्ट प्रकट होता है कि नंद वंशीय नृप जैनी थे। क्योंकि उन्होंने जैन मूर्ति को बल-जोरी ले जा कर मगध देश में स्थापित की थी। इस से यही सिद्ध होता है कि यह घराना जैनधर्मोपासक था। ये राजा सेवा तथा दर्शन आदि के लिये ही जैन मूर्ति लालाकर मन्दिर बनवाते होंगे। जैन इतिहास वेत्ताओंने तो विश्वासपूर्वक लिखा है कि नंदवंशीय राजा जैनी थे। तथा इतिहास से भी यही प्रकट होता है।

सूर्य उदय होकर मध्याह्न तक प्रज्वलित होकर जिस प्रकार संध्या के समय अस्त हो जाता है तदनुरूप इस पवित्र भूमिपर कई राज्य उदय होकर अस्त भी हो गये। इसी प्रकार की दशा पाटलीपुत्र नगर की हुई। नंद वंश के प्रताप का सूर्य अंतिम

नरेश महा पद्मानंद के शासन के साथ ही साथ अस्त हो गया। और इसके स्थान पर मौर्य वंश का दिवाकर देदीप्यमान हुआ। मौर्य वंश उदय होते ही उन्नति के सर्वोच्च सोपान पर बात की बात में पहुँच गया। नीतिनिपुण चाणक्य की सहायता से मौर्य कुल मुकुट महाराजा श्रीचंद्रगुप्त ने नंदवंश के पश्चात् मगध राज्य की बागडोर अपने हाथ में ली। चंद्रगुप्त ने अपनी कार्य कुशलता और निर्भीक वीरता से इतनी सफलता प्राप्त की कि आप भारत सम्राट की पदवी से विभूषित हुए। इतिहास के काल में तो आपही ने सबसे पहिले सम्राट की उपाधि प्राप्त की थी।

महाराजा चंद्रगुप्त ने ग्रीस के (युनानी) बादशाह सिकन्दर को तो इस प्रकार पराजित किया कि उसने जीवन भर भारत की ओर आँख उठाकर नहीं देखा। सिकन्दर का देहान्त ई. सं. ३२३ पूर्व हुआ। इसके पश्चात् सेल्यूकस ने भारत पर चढ़ाई की। पर वह भी विफल मनोरथ हुआ। उसने चंद्रगुप्त से एक ऐसी लज्जास्पद संधि की कि काबुल कन्धार और हिरत तक का देश चंद्रगुप्त को मिल गया। सेल्यूकस ने चिर शान्ति स्थाई रखने के हेतु अपनी पुत्रि का विवाह भी चंद्रगुप्त के साथ कर दिया। चन्द्रगुप्त ने अपने साम्राज्य का विस्तार भारत के बाहिर भी किया था। सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य शूरवीर एवं रण बांकुरा साहसी योद्धा था। यह राजनीति विशारद होने के कारण अपने साम्राज्य में सर्व प्रकार से शांति रखने में समर्थ था।

जैन ग्रंथकारों ने लिखा है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य जैनी था। उसके गुरु अंतिम श्रुत केवली आचार्य भद्रबाहुस्वामी थे। चन्द्रगुप्त ने जैनधर्म का खूब प्रचार किया था। उसने काबुल,

कन्धार, अर्बिस्तान, ग्रीस, मिश्र, आफ्रिका एवं अमेरिका तक में जैन धर्म का प्रचार तथा फैलाव किया। ब्राह्मणों ने इसे नीच जाति एवं शुद्राणी का पुत्र होना लिखा है। इस तरह उसे नीच बताने का कारण यही है कि वह जैनधर्मावलम्बी था। जैनधर्म के प्रचारक को इस तरह सम्बोधन करना ब्राह्मणों के लिये असाधारण बात नहीं थी। ब्राह्मणों ने कलिंग देश के निवासियों को "वेदधर्म विनाशक" ही लिख डाला है। इतना लिख कर ही वे सन्तोष नहीं मान बैठे वरन् उन्होंने यह भी उल्लेख कर दिया कि कलिंग प्रदेश अनार्य भूमि है तथा उस भूमि में रहने वाला ब्राह्मण पतित हो जाता है। जब वे जैनधर्म के इतने कट्टर विरोधी थे तो चन्द्रगुप्त को हल्की जाति का लिख दिया तो इसमें आश्चर्य की क्या बात थी ?

सम्राट् चन्द्रगुप्त का सच्चा ऐतिहासिक वर्णन कई वर्षों तक गुप्त रहा। यही कारण था कि कई लोग चन्द्रगुप्त को जैनी मानने में संकोच किया करते थे। और कई तो साफ इन्कार करते थे कि चन्द्रगुप्त जैनी नहीं था। पर अब यूरोपीय और भारतीय पुरातत्वज्ञों की सोध और खोज से तथा ऐतिहासिक साधनों से सर्वथा सिद्ध तथा निश्चय हो चुका है कि चन्द्रगुप्त मौर्य जैनी था। कतिपय विद्वानों की सम्मतियों का यहाँ लिखा जाना युक्तिसंगत होगा।

चन्द्रगुप्त के जैनी होने के विशद प्रमाण राय बहादुर डाक्टर नरसिंहाचार्य ने अपने "श्रवण वेलगोल" नामक पुस्तक में संग्रह किये हैं। यह पुस्तक अंग्रेजी भाषा में लिखी गई है। जैन गजट आफिस, ८ अम्मन कुवेल स्ट्रीट, मदरास के पते से मंगाने पर

मिल सकती है। इस पुस्तक में चन्द्रगुप्त का जैनी होना प्रमाणित है। अशोक भी अपनी तरुण वय में जैनी माना गया है। इस प्रकार नंद वंश और चन्द्रगुप्त मौर्य का जैनी होना सिद्ध है। इन सबका वर्णन श्रवण बेलगोल के शिलालेखों. (Early faith of Ashok Jainism by Dr. Thomas, South Indian Jainism Volume II page 39). राज तरंगिणी और आइनई अकबरी में मिल सकता है। पाठकों को चाहिए कि उपरोक्त पुस्तकें मंगाकर इन बातों से जरूरी जानकारी प्राप्त करें। आगे और भी देखिये, भिन्न भिन्न विद्वानों का क्या मत है ?

डाक्टर ल्यूमन Vienna Oriental Journal VII 382 में श्रुत केवली भद्रबाहु स्वामी की दक्षिण की यात्रा को स्वीकार करते हैं।

डाक्टर हनिले Indian Antiquary XXI 59,60 में तथा डाक्टर टामस साहब अपनी पुस्तक Jainism of the Early Faith of Asoka page 23 में लिखते हैं कि "चन्द्रगुप्त एक जैन समाज का योग्य व्यक्ति था। जैन ग्रंथकारों ने एक स्वयं सिद्ध और सर्वत्र विख्यात बात का वर्णन करते उपरोक्त कथन को ही लिखा है जिसके लिए किसी भी प्रकार के अनुमान या प्रमाण देने की आवश्यकता ज्ञात नहीं होती हैं। इस विषय में लेखों के प्रमाण बहुत प्राचीन हैं तथा साधारणतया संदेह रहित हैं। मैगस्थनीज (जो चन्द्रगुप्त की सभा में विदेशी दूत था) के कथनों से भी यह बात झलकती है कि चन्द्रगुप्त ब्राह्मणों के सिद्धान्तों के विपक्ष में श्रमणों (जैन मुनियों) के धर्मोपदेश को ही स्वीकार करता था।" टामस साब एक जगह और सिद्ध करते हैं

कि चन्द्रगुप्त मौर्य के पुत्र और पौत्र बिन्दुसार और अशोक भी जैन धर्मावलम्बी ही थे। इस बात को पुष्ट करने के लिये साहब ने जगह जगह मुद्राराक्षस, राजतरंगिणी और आइनई अकबरी के प्रमाण दिये हैं।

श्रीयुत जायस वाल महोदय Journal of the Behar and Orissa Research Society Volume III में लिखते हैं—"प्राचीन जैन ग्रंथ और शिलालेख चन्द्रगुप्त मौर्य को जैन राजर्षि प्रमाणित करते हैं। मेरे अध्ययन ने मुझे जैन ग्रन्थों की ऐतिहासिक वार्ताओं का आदर करना अनिवार्य कर दिया है। कोई कारण नहीं कि हम जैनियों के इन कथनों को कि चन्द्रगुप्त ने अपनी प्रौढ़ा अवस्था में राज्य को त्याग कर जैन दीक्षा ले मुनिवृति में ही मृत्यु को प्राप्त हुए, न मानें, इस बात को मानने वाला मैं ही पहला व्यक्ति नहीं हूँ।" मि. राईस भी जिन्होंने श्रवण वेलगोल के शिलालेखों का अध्ययन किया है पूर्ण रूप से अपनी राय इसी पक्ष में देते हैं।

डाक्टर स्मिथ अपनी Oxford History of India नामक पुस्तक के ७५, ७६ पृष्ट में लिखते हैं "चन्द्रगुप्त मौर्य का घटना पूर्ण राज्यकाल किस प्रकार समाप्त हुआ इस बात का उचित विवेचन एक मात्र जैन कथाओं से ही जाना जाता है। जैनिय ने सदैव उक्त मोर्य सम्राट् को बिम्बसार (श्रेणिक) के सदृश जैन धर्मावलम्बी माना है और उनके इस कथन को असत्य समझने के लिए कोई उपयुक्त कारण नहीं है। यह बात भी सर्वथा सत्य है कि शैशुनाग, नंद और मौर्यवंश के राजाओं के समय मगध देश में जैन धर्म्म का प्रचार प्रचुरता से था। चद्रगुप्त ने

यह राजगद्दी एक चतुर ब्राह्मण की सहायता से प्राप्त की थी। यह बात इस बात में बाधक नहीं होती कि चन्द्रगुप्त जैनी था मुद्रा राक्षस नामक नाटक में एक जैन साधु का भी उल्लेख है। यह साधु नंदवंशीय एवम् पीछे से मौर्यवंशीय राजाओं के राक्षस मंत्री का खास मित्र था।"

Mr. H. L. O. Garrett M. A; L. E. S. in his essay "Chandragupta Maurya" says—"Chandragupta, who was said to have been a Jain by religion, went on a pilgrimage to the South of India at the time of a great famine. There he is said to have starved himself to death. At any rate he ceased to reign about 298 B. C."

इत्यादि बातों से यही सिद्ध होता है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य एक जैनी राजा था। उसने अपने राज्य को त्याग कर जैन दीक्षा ली थी। दीक्षा लेकर उसने समाधि मरण प्राप्त किया था। और ज्यों ज्यों ऐतिहासिक खोज होती रहेगी त्यों त्यों प्रमाण भी विस्तृत संख्या में हस्तगत होते रहेंगे।

चन्द्रगुप्त के राज्य का उत्तराधिकारी उनका पुत्र बिन्दुसार हुआ। यह भी बड़ा पराक्रमी और नीतिज्ञ राजा था। यह जैन धर्म का उपासक एवं प्रचारक भी था। इसके शासन काल में भी जैन धर्म उत्थान के उच्च शिखिर पर था। बौद्ध और वेदान्तियों का जोर मिटता जा रहा था। उन के दिन घर नहीं थे। जो राजा का धर्म होता है वही प्रजा का होता है यह एक साधारण बात है। इसी नियमानुसार जैन धर्म का क्षेत्र बहुत

विस्तृत हो गया था। बिन्दुसार राजा शांति प्रिय एवं संतोषी था। इसका राज्य काल निर्विघ्नतया बीत रहा था। इसके शासन के समय ऐसी कोई भी महत्व की घटना नहीं घटित हुई जिसका कि इस जगह विशेष उल्लेख किया जाय।

राजा अपनी प्रजा को पुत्र तुल्य समझता था तथा प्रजा भी अपने राजा की पूर्ण भक्त थी। जैन धर्म का एक उद्देश्य शांति भी है जिसका कि साम्राज्य बिन्दुसार के समय में था। इसने कई यात्रायें की। कुमारी कुमार तीर्थ पर तो यह राजा निवृत भाव में कई बार संलग्न रहता था। लोकोपकारी कार्यों में राजा की अधिक रुचि थी। प्रजा के सुभीते के लिए जगह जगह कुए, तालाब और बगीचे बनाने में इसने विपुल सम्पत्ति व्यय की। अनेक विद्यालय एवं जिनालय इसके हाथ से प्रतिष्ठित हुए। कृषि, व्यापार और शिल्प की उन्नति के लिये ही बिन्दुसार ने विशेष प्रयत्न किया था। इस प्रकार इसने अपना जीवन परम सुख से व्यतीत किया।

महाराजा बिन्दुसार के पश्चात् मगध देश का राज्य मुकुट अशोक के शिर पर शोभित हुआ। अशोक भी अपने पिता व पितामह की तरह शूरवीर एवं प्रतापी योद्धा था। यह राजा भी जैनी ही था। महाराजा अशोक की तक्षशिला की प्रशस्तियों और आज्ञाओं में भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी की स्तुतियों पाई जाती हैं। डा० लार्ड कनिङ्ग होमने अपनी पुस्तकों में इस बात का उल्लेख किया है कि राजा अशोक पहले तो जैनी था पर बाद में उसने बौद्ध धर्म कब स्वीकार किया इस विषय में विद्वानों का यह मत है कि ई. स. २६२ पूर्व में अशोक ने कलिङ्ग देश पर

चढ़ाई की। उस युद्ध में कलिङ्ग के कई योद्धा जान से हाथ धो बैठे। यह देख कर अशोक का हृदय दया से द्रविभूत हो कर तिलमिला उठा। युद्ध की पापमयी रक्त रंजित लीला को देख कर सहसा उसका विचार परिवर्तित हो गया। कलिङ्ग देश को जीत कर जब वह मगध देश में आया तो उसने आत्म प्रेरणा से यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि जीवन पर्यन्त कभी भी मैं युद्ध नहीं करूँगा।

जिस समय अशोक यह प्रतिज्ञा कर रहा था एक बौद्ध भिक्षु भी राजा के पास पहुँच गया और राजा की ऐसी दशा देख कर उसने अहिंसा का महत्व बता उसे अपने पंथ में मूँड लिया। वह बौद्ध भिक्षु तो नहीं बना पर अहिंसा के प्रेम में ऐसा रंगा हुआ था कि उसने चट बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। जैनों की अनुपस्थिति में यदि उसने इस मत को ग्रहण कर लिया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। राजा अशोक ओजस्वी एवं पूर्ण मनस्वी था। उसने बौद्ध धर्म का प्रचार खूब जोरों से किया। देश की गली गली में बौद्ध धर्म का डंका बजने लगा तथा झुण्ड के झुण्ड आ कर बौद्ध धर्म की शरण ताकने लगे।

इसी की धार्मिक आज्ञाओं के अध्ययन से पता पड़ता है कि वह भारत का सम्राट् था। लोकोपकारी कार्यों को करना उसने अपना धार्मिक कर्त्तव्य ठहराया था। उसने ठौर ठौर सार्वजनिक मार्ग पर आवश्यकतानुसार कुए, तालाब, बाग- बगीचे, सड़कें और पथिकाश्रम बनाए। बौद्ध श्रमणों के हित उसने जगह जगह संघाराम (मठ) बनवाए तथा बुद्ध की मूर्तियों का तो उसने तांता ही लगा दिया। पहाड़ों के अन्दर श्रमण समाज

के हित गुफाएँ बनाने की भी उसने योजना तथा व्यवस्था की। बुद्ध ने तो केवल अपने मत का कलेवर (देह) मात्र ही तैयार किया था पर उसमें जीवन प्रदान कर उसे जगाने का कार्य यदि किसीने प्रयत्न जी तोड़ करके किया तो अशोक ने किया। ठीक उसी तरह से जिस प्रकार इसके पिता और पितामह विन्दुसार चन्द्रगुप्तने जैन धर्म का प्रचार किया था उसी प्रकार अशोकने बौद्ध धर्म का प्रचार किया। किन्तु अशोक में एक बात की बड़ी खूबी थी वह दूसरे वेदान्तियों या बौद्धों की तरह दूसरे धर्मवालों से जातीय शत्रुता न तो रखता था न रखनेवालों को पसंद करता था। दूसरे मतवालों की ओर तो वह देखता भी नहीं था पर जैनियों के प्रति तो उसे स्वाभाविक सहानुभूति थी। अशोक ने अपनी शेष आयु धर्म प्रचार एवम् शांति से ही व्यतीत की। अशोक के पुत्रों में दो मुख्य थे—एक कुणाल और दूसरा वृहद्रथ (दशरथ)

अशोकने कुणाल को उज्जैन भेज दिया था। वहाँ उसकी सौतेली मा ने षट्यंत्र के प्रयोग से उसे अंधा कर दिया पर कृपालु अशोक ने इतना होने पर भी उसे उज्जैन में ही रक्खा। इधर पाटलीपुत्र में अशोक के पीछे उसका पुत्र वृहद्रथ सिंहासनारूढ़ हुआ। यह राजा निर्बल था अतएव मौर्यवंश का प्रताप फीका पड़ने लगा। राजा को निस्तेज देखकर उसके कपटी मंत्रीने साहस कर एक दिन वृहद्रथ को जान से मारडाला।

राजा वृहद्रथ की हत्या करनेवाला पुष्पमन्त्री वृहस्पति के उपनाम से मगध देश की राजगद्दी पर अधिकार कर बैठा। बृहस्पति बहादुर एवं कार्य कुशल व्यक्ति था। यह ब्राह्मण धर्मी

था अतएव उसने मरते हुए ब्राह्मण धर्म में फिर से जान डाली। इसने चाहा कि अश्वमेध यज्ञ कर चक्रवर्ती की उपाधि उपार्जन करूँ पर महामेघवहान चक्रवर्ती महाराजा खारवेलने मगध देश पर आक्रमण कर बृहस्पति के मदको मर्दन कर उसे इस प्रकारसे पराजित किया कि उसके पास से सारा धन, जो वह कलिङ्ग देश में डकैती करके लाया था, तथा पूर्व नन्दराजा स्वर्णमय जिन मूर्ति जो कुमार गिरि तीर्थ से उठा लाया था, ले लिया। खारवेल ने पूरा बदला ले लिया। खारवेल ने मगध से वह धन और मूर्ति फिर जहाँ की तहाँ कलिङ्ग देश में पहुँचा दी। अब मगध देश भी कलिङ्ग देश के अधिकार में आ गया।

उधर उज्जैन नगरी में महाराजा कुनाल का पुत्र सम्प्रति राज्य करने लगा। यह सम्प्रति राजा पूर्व भवमें एक भिक्षुक का जीव था। इस भिक्षुक ने आचार्य श्री सुहस्तीसूरी के पास दीक्षा ग्रहण की थी जिसका विस्तृत वर्णन जैन जाति महोदय में लिखा गया है, जब यह भिक्षुक जैनमुनि हो गया और रात्रि में अतिसार के रोग से मर कर राजा कुनाल के घर उत्पन्न हुआ यही सम्प्रति उज्जैन नगरी का राजा हुआ। उस समय आचार्य श्री सुहस्तीसूरी उज्जैन में भगवान महावीर स्वामी की रथयात्रा के महोत्सव पर आए थे। रथयात्रा की सवारी नगर के आम रास्तोंपर धूमधाम के निकल रही थी। आचार्य श्री के शिष्य भी इसी सवारी के साथ चल रहे थे।

पहुँचते पहुँचते सवारी राजमहलों के निकट पहुँची। झरोखे में बैठा हुआ सम्प्रति राजा टकटकी लगाकर आचार्य श्री की ओर निहारने लगा। न मालूम किस कारण से राजा का चित्त

आचार्य श्री की ओर अधिक आकर्षित होने लगा। राजा ने इस समस्या को हल करना चाहा। सोचते सोचते सहसा राजा को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। राजा को पिछले भव की सब बातें याद आई। राजा ने सोचा एक दिन वह भी था कि मैं भिक्षुक होकर दाने दाने के लिये घर घर भटकता था। केवल पेट भरने के लिये ही मैंने इन आचार्य के पास दीक्षा ली थी उस दीक्षा के ग्रहण करने से एक ही रात्रि में मेरा कल्याण हो गया। इसी दीक्षा के प्रज्जुवल प्रताप से मैं इस कुल में राजा के घर उत्पन्न होकर आज राजऋद्धि भोग रहा हूँ। आज मैं सहस्रों दासों का स्वामी हूँ। यह सब आचार्य श्री ही का प्रताप है। इनकी कृपा बिना इतनी विपुल सम्पत्ति का अधिकारी बनना मेरे लिये कठिन ही नहीं असम्भव भी था।

इस विचार के आते ही राजा सम्प्रति झरोखे से चल कर नीचे आया और आचार्य श्री के चरणकमलों को स्पर्श कर अपने आपको अहोभागी समझने लगा। उसने विधि पूर्वक बन्दना की और वह कहने लगा कि भगवन् मैं आपका एक शिष्य हूँ। आचार्यश्री ने श्रुतज्ञान के उपयोग से सब वृतान्त जान लिया। आचार्यश्री बोले, राजा तेरा कल्याण हो! तू धर्म कार्य में निरत रहो। धर्म ही से सब पदार्थ प्राप्त होते हैं। सम्प्रति राजा धर्म लाभ सुनकर निवेदन करने लगा कि आप ही के अनुग्रह से मैंने यह राज्य प्राप्त किया है अतएव यह राज्य अब आप स्वयं लेकर मुझे कृतार्थ कीजिये।

आचार्यश्री ने उत्तर दिया कि यह प्रताप मेरा नहीं किन्तु जैनधर्म का है। यह धर्म क्या रंक और क्या राजा सबका सदृश

उपकार करता है। जिस धर्म के प्रभाव से आपने यह सम्पदा उपार्जित की है उसी धर्म की सेवा में यह व्यय करो। ऐसा करने से आपका भविष्य और भी अधिक उज्जवल होगा। हम तो निस्पृही जैन मुमुक्षु हैं। हमें इस राज्यऋद्धि से क्या सरोकार। यदि आप चाहें तो इसी राज्य की ऋद्धि के सद्व्यय से जैनधर्म का सारे विश्व में प्रचार कर सकते हैं। जैनधर्म के प्रसार से अनेक जीवों का कल्याण होना बहुत सम्भव है।

सूरीजी के उपदेशको मानकर हृदय में "यतो धर्मस्ततो जय" के सिद्धान्त के सार को ठान राजाने उसी समय रथयात्रा में सम्मिलित हो, यह उद्घोषणा करदी कि मेरे राज्य में आज से कोई व्यक्ति पशु एवं पक्षी का शिकार नहीं करे। माँस और मदिरा के भक्षक व पियक्कड़ मेरे राज्य में नहीं रहने पावेंगे। सम्प्रति नरेशने उसी दिन से लोक हितकारी परम पूनीत जैनधर्म का अवलम्बन ले रात दिन इसी के प्रचार का प्रबल प्रयत्न करने में संलग्न होने का निश्चय किया। जैन धर्मावलम्बी श्रावकों को हर प्रकार से सहायता देने की व्यवस्था की गई। जैन शास्त्रकारों ने तो यहाँ तक लिखा है कि सम्प्रति नृपने जैनधर्म का इतना प्रचार किया कि उसने सवाक्रोड पाषाण की प्रतिमाएं, ९५००० सर्वधात की प्रतिमाएं तथा सवा लाख नये मन्दिर बनवाये। आपने इसके अतिरिक्त ६०००० पुराने मन्दिरों का जिर्णोद्धार कराया १७००० धर्मशालाएं, एक लाख दानशालाएं, अनेक कूए, तालाब, बाग और बगीचे, औषधालय और पथिकाश्रम बनाकर प्रचुर द्रव्य का अनुकरणीय सदुपयोग किया। राजा सम्प्रतिने जो सिद्धाचलजी का विशाल संघ निकाला था उसमें सोना चांदी के

५००० देहरासर, पन्ना माणिक आदि रत्नमणियों की अनेक प्रतिमाएं तथा ५००० जैन मुनि थे। सब मिला कर उस संघ के ५ लाख यात्रि थे। उसने यह प्रतिज्ञा भी ले रक्खी थी कि नित्यप्रति कम से कम एक जिन मन्दिर बनकर सम्पूर्ण होने का समाचार सुनकर ही मैं भोजन किया करूंगा। इससे विदित होता है कि सम्प्रति नरेश जैनधर्म के प्रचार में बहुत अधिक अभिरुचि रखता था।

एक वार राजा सम्प्रति ने यह अभिलाषा श्री आचार्य सुहस्ती सूरी महाराज के पास प्रकट की कि मैं एक जैन सभा को एकत्रित करना चाहता हूँ। आचार्य श्री ने उत्तर दिया "जहा सुखम्"। राजा सम्प्रति ने इस सभा में दूर दूर से अनेक मुनि-राजाओं को आमंत्रित किया। बड़े बड़े सेठ साहुकार भी पर्याप्त संख्या में निमंत्रित किये गये। सभा के अध्यक्ष सर्व सम्मति से आचार्य श्री सुहस्ती सूरीजी महाराज निर्वाचित हुए। सभा का जमघट खूब हुआ तथा सभापति के मञ्च से ज्ञान और विज्ञान के तत्वों से पूरित आभिभाषण सुनाया गया। इस भाषण में मुख्य-तया तीन विषयों का विशद विवेचन किया गया था। १—महा-वीर स्वामी का शासन २—जैनधर्म की महत्ता ३—तात्कालीन समाज का धार्मिक प्रगति। सभासदों की ओर से राजा को धन्यवाद भी दिया गया।

सभापति श्री सुहस्तिसूरीजी ने एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव रक्खा कि यह सभा जिस उद्देश्य से एकत्रित हुई है उसको कार्यरूप में परिणित करने के लिये यह परमावश्यक समझती है कि जिस प्रकार मौर्यकुल मुकुटमणि सम्राट चन्द्रगुप्त ने भारत से बाहिर

विदेशों में जैनधर्म का प्रचार किया उसी तरह राजा सम्प्रति से भी आशा की जाती है कि विदेशों में जैनधर्म का प्रचार करने के हेतु उपदेशक भेजकर ऐसा वातावरण उत्पन्न करदे कि अनार्य देश के निवासी साधुओं की ओर सहानुभूति प्रदर्शित करें तथा उनके आचार व्यवहार आदि में किसी भी प्रकार की बाधा न पहुँचाते हुए उपदेश सुनने की ओर अभिरुचि रक्खें। इस प्रकार से जैन मुनियों को विदेश में विहार करने का अवसर भी प्राप्त हो सकेगा।

यह प्रस्ताव जिस आशा से रक्खा गया था उसी तरह के उत्साह से सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ। राजा सम्प्रति ने भरी सभा में सब के समक्ष हाथ जोड़ कर यह प्रतिज्ञा की कि मैं उपस्थित चतुर्विध श्री संघ को विश्वास दिलाता हूँ कि मैं जैनधर्म के प्रचार के उद्योग में किसी भी प्रकार की कमी नहीं रक्खूंगा तथा विदेश के प्रचार विभाग के लिये विशेष आर्थिक सहायता दूँगा। सभापति के भाषण का प्रभाव बहुत पड़ा और सारे जैन मुनि भी प्रचार के हित कमर कस कर तैयार होने का वचन देने लगे। इस प्रकार सभा अपने कार्य को सफलतापूर्वक सम्पादन कर "वीर भगवान की जय" की तुमुल ध्वनि से आकाश को गुँजाती हुई विसर्जित हुई।

इस सभा के पश्चात् राजा सम्प्रति सदा इसी विचार में व्यस्त रहता था कि जैनधर्म के प्रचारकों को प्रवास में भेजकर किस प्रकार शीघ्रातिशीघ्र प्रचार का कार्य किया जाय? उस अनार्य क्षेत्र को मुनि विहार के योग्य करने के लिये उसने बहु संख्यक कार्यकर्त्ताओं को चारों दिशाओं में भेज दिया। इन बातों का

उल्लेख पूर्वाचार्यों के रचित ग्रन्थों में, जहाँ राजा सम्प्रति का जीवन लिखा हुआ है, विस्तारपूर्वक उपलब्ध होता है। इन बातों का उल्लेख अनेक आचार्यों ने भिन्न भिन्न ग्रन्थों में स्थान २ पर किया है। उनमें से नीचे कुछ श्लोक उध्धृत कर पाठकों को मैं यह बताना चाहता हूँ कि राजा सम्प्रति ने अनार्य देशों में जैनधर्म को प्रसारित करने को क्या क्या उपाय किये ? आशा है पाठकगण इन श्लोकों का ध्यानपूर्वक पठन कर ऐतिहासिक बातों से पूर्ण जानकारी प्राप्त करेंगे।

प्रवर्तयामि साधूनां। सुविहार विधित्सया।
अन्ध्राद्यनार्यदेशेषु। यति वेषधारान् भटान् ॥१५८॥
येन व्रत समाचारः। वासना वासितो जनः।
अनार्योत्पन्नदानादौ। साधूनां वर्तते सुखम् ॥१५९॥
चिन्तयित्वेत्थमाकार्यानार्यानेवमभाषत।
भो यथा मद्भटायुष्मान् याचन्ते मामकं करम् ॥१६०॥
तथा दद्यात तेऽप्यूचुः। कुर्म एवं ततोनृपः।
तुष्टस्तान् प्रेषयामास। स्वस्थानं स्वभटानपि। ।१६१॥
सत्तपस्वि समाचार। दत्तान् कृत्व यथाविधि'।
प्राहिणोन्नृपतिस्तत्र। बहूँस्तद्वेषधारिणः ॥१६२॥
ते च तत्र गतास्तेषां। वदन्त्येवं पुरःस्थिताः।
अस्माकमन्नपानादि। प्रदेयं विधिनामुना ॥१६३॥
द्वि चत्वारि शता दोषैर्विशुद्धंयद्भवेषहि।
तथैव कल्पतेऽस्माकं वस्त्रपात्रादि किञ्चन ॥१६४॥

आधाकर्मादयश्चामी । दोषा इत्थं भवन्ति भोः ।
तच्छुद्धमेव नः सर्वं । प्रदेय सर्व दैव हि ॥ १६५ ॥
न चात्रार्थे वयं भूयो भणिष्यामः किमप्यहो ।
स्वबुद्धयास्वत एवोचैर्यतध्वं स्वामी तुष्टये ॥ १६६ ॥
इत्यादिभिर्वचोमस्ते । तथा तैर्वासितादृढम् ।
कालेन जज्ञिरेऽनार्य । अप्यार्येभ्यो यथाधिकाः ॥ १६७ ॥
अन्येद्युश्च ततो राज्ञा । सूरयो भणितो यथा ।
साधवोऽन्ध्रादि देशेषु । किं न वो विहरन्त्यमी॥ १६८ ॥
सूरिराह न ते साधु-समाचारं विजानते ।
राज्ञा चे दृश्यते तावत् । को दृशीतत् प्रतिक्रिया ॥ १६९ ॥
ततो राजापरोधेन । सूरिभिः केऽपि साधवः ।
प्रेषिता तस्तेषु ते पूर्वं । वासानासितत्त्वतः ॥ १७० ॥
साधूनामन्नपान्नादि । सर्वं यथोचितम् ।
नीत्या संपादयन्तिस्म । दर्शयन्तोऽति संभ्रमम्॥ १७१ ॥
सूरीणमन्तिकेऽन्ये । द्युः साधव समुपागताः ।
उक्तवन्तो यथानार्य । न.ममात्रेण केवलम् ॥ १७२ ॥
वस्त्रान्नपानदानादि । व्यवहारेण ते पुनः ।
आर्येभ्योऽभ्यधिका एव । प्रतिभान्ति सदैव नः॥ १७३ ॥
तस्मात् सम्प्रति राजेनाऽनार्यदेशा अपि प्रभोः ।
विहारे योग्यतां याता सर्वतोऽपि तपास्वनाम् ॥ १७४ ॥
श्रत्वैवं साधु वचन । माचार्य सुहस्तिनः ।
भूयोऽपि प्रेषयामासुर । न्यान न्याँ तपस्विनः ॥ १७५ ॥

ततस्तैं भद्रका जातः । साधून्न देशनाश्रुतेः ।
तत् प्रभृत्येव ते सर्वे । निशीथेऽपि यथोहितम् ॥ १७६ ॥
एवं सम्प्रति राजेन । यतिनां संप्रवर्तितः ।
विहारोऽनार्यदेशेषु । शासनोन्नतिमिच्छता ॥ १७७ ॥

"नक्तत्वभाष्ये"

समण भउ भाविएसु तेसुं देसेसुएसणा इहिं ।
सोहु सुहं विहारियां तेणते भद्दया जाया ॥

(निशीथचूर्णि)

महाराजा सम्प्रति ने सुयोग्य पुरुषों को चुनकर उन्हें साधुओं के आचार और व्यवहार से परिचित किये। जब वे पूरी तरह से जैन मुनि के कर्त्तव्य कर्म्मों को सीख गये तो राजा ने उन्हें मुनियों का वेष भी पहिनवा दिया। इस तरह से अनार्य देश को मुनि-विहार के योग्य बनाने के हित ही इन नकली साधुओं को सम्प्रति नरेश ने अनार्य देश में भेज दिये। साथ ही कुछ योद्धाओं को भी भेज दिया ताकि वे आवश्यकता पड़ने पर सहायता पहुँचा सकें। मुनिवेषधारी पुरुषों ने जाकर अनार्य देश में जैन तत्वों का उपदेश दिया। उन्होंने लोगों को जैन मुनियों के आचार और व्यवहार की बातों का विशेष विवेचन सहित उपदेश दिया। इस प्रकार से प्रयत्न करने पर जैन मुनियों के मार्ग में आनेवाली अनेक बाधाएँ दूर होती रहीं।

जब जैन मुनियों के विहार करने के योग्य अनार्यदेश भी हो गया तो सम्प्रति नरेशने आचार्य सुहस्ति सूरि और मुनियों से विनती की कि अब आप उस क्षेत्र में पधार कर अनार्यदेश के लोगों में जैन धर्म का प्रचार कीजिये। आचार्य श्री की

आज्ञा से जैन साधुओं के झुंड के झुंड अनार्यदेश में जाने लगे। मुनि लोगों की अभिलाषा कई दिनों से पूर्ण हुई। वे बड़े जोरों से आगे इस प्रकार बढ़े कि जिस प्रकार एक व्यापारी अपने लाभ के लिये उत्सुकतापूर्वक दुखों की परवाह न करता हुआ बढ़ता है। कुछ मुनि अनार्यदेश से लौटकर आते थे और आचार्यश्री को वहाँ की सब बातें सुनाया करते थे। आये हुए साधुओं ने कहा कि हे प्रभो! अनार्य देश के लोग यहाँ के लोगों से भी अधिक श्रद्धा तथा भक्ति प्रकट करते हैं।

इस प्रयत्न से इतनी सफलता मिली कि अर्बिस्तान, अफगानिस्तान, तुर्कीस्तान, ईरान, युनान, मिश्र, तिब्बत, चीन, ब्रह्मा, आसाम, लंका, आफ्रिका और अमेरिका तक के प्रदेशों में जैन धर्म का प्रचार हो गया। उस समय जगह जगह पर कई मंदिर निर्माण कराए गये। उस समय तक म० ईसा व महमूद पेगम्बर का तो जन्म तक भी नहीं हुआ था। क्या आर्य और क्या अनार्य सब लोग मूर्ति का पूजन किया करते थे। कारण यह था कि वेदान्तियों में भी मूर्ति पूजा का विधान था, महात्मा बुद्ध की विशेष मूर्तियाँ सम्राट् अशोक से स्थापित हुई। जैनी तो अनादि से मूर्ति पूजा करते आए हैं। अतएव सारा संसार मूर्ति पूजक था। यूरोप में तो विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में भी मूर्त्तिपूजा विद्यमान थी। आष्ट्रेलिया और अमेरिका में तो भूमि के खोदने पर अब भी कई मूर्त्तियाँ निकल रही हैं। वे निकली हुई सब मूर्त्तियों जैनों की हैं। मक्का में भी एक जैन मन्दिर विद्यमान था। पेगम्बर महमूद के जन्म के पश्चात् वे मूर्त्तियाँ महुआ शहर (मधुमति) में पहुँचाई गई थीं। इससे सिद्ध होता है कि

सम्प्रति नरेशने अवश्य अनार्य देशों में जैन धर्म का प्रचुर प्रचार किया था। उसने जैन मन्दिरों की प्रतिष्ठा भी करवाई थी। राजा सम्प्रति के राज्य काल में जैन धर्म का प्रचार आर्य और अनार्य दोनों देशों में था।

उस समय सब जैनी मिलाकर चालीस क्रोड़ की संख्या में थे। क्यों न हों ? जब शिशुनाग वंशी नन्दवंशी और मौर्य चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार और महाराजा सम्प्रति जैसे प्रतापशाली नृपतिगण जैन धर्म के प्रचार के हेतु कटिबद्ध थे, ऐसी दशा में चालीस क्रोड़ जैनों का होना किसी भी प्रकार से आश्चर्यजनक नहीं है। अर्वाचीन समय के इतिहासकार भी हमारी उस बात की पुष्टि करते हैं कि किसी समय जैनियों की संख्या चालीस क्रोड़ के लगभग थी यथा—

"भारत में पहिले ४०००००००० जैन थे। इसी मत से निकल कर लोग अन्य मतों में प्रविष्ट होने लगे। इसी कारण से इनकी संख्या घट गई है। यह धर्म अति प्राचीन है। इस धर्म के नियम सब उत्तम हैं जिनसे देश को असीम लाभ पहुँचा है।"

—बाबू कृष्णलाल बनर्जी।

मौर्य मुकुटमणि त्रिखण्डभुक्ता महाराजा सम्प्रति ने जैन धर्म की बहुत उन्नति की। जैन इतिहासकारों ने इन्हें अनार्यदेश तक में जैन धर्म प्रचार करने वाले अन्तिम राजर्षि की योग्य एवं उचित उपाधि दी है। सम्प्रति नरेश का इतिहास सुवर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। आप की धवल कीर्ति आज भी विश्वभर में

व्यापक है। आप का नाम जैन साहित्य में सदा के लिये अमर है। जैन राजाओं में आप का आसन सर्वोच्च माना जाता है। सम्प्रति राजा ने जो उपकार जैन समाज पर किया है वह भूला नहीं जा सकता। अन्त में राजा सम्प्रति ने पञ्चपरमेष्टि नमस्कार महामंत्र का आराधन करते हुए समाधी मरण को प्राप्त किया।

सम्राट् सम्प्रति का हमने जो ऊपर इतिहास लिखा है जिससे पाठकों को भली भाँति ज्ञान हो गया होगा कि विक्रम पूर्व दो शताब्दि पहला इस पवित्र भूमि पर एक महान् नरपति ने जैन धर्म की खूब उन्नति की थी। इतना होने पर भी कितनेक पाश्चात्य और अज्ञात भारतीय लोग सम्राट् सम्प्रति को एक कल्पनिक व्यक्ति ठहरा दिया। पर उनका कहना जहाँ तक कि सम्राट् सम्प्रति का इतिहास ज्ञानभण्डारों की दीवार के बीच पड़ा था वहाँ तक ही माना जाता था। आज नयि सोध एवं खोज के जरिये सम्प्रति का उज्ज्वल इतिहास पढ़ कर अच्छे अच्छे ऐतिहासिक विद्वान् भी मुग्धमंत्र बनगये हैं और सम्राट् सम्प्रति को ऐतिहासिक एवं जैन धर्म प्रचारक महापुरुष मानने को विद्वद् समाज एक ही आवाज से स्वीकार करते हैं। आगे चलकर यह कहना भी अतिशय उक्ति नहीं है कि कितनेक लोग जो प्राचीन शिलालेख स्थम्भलेख में जो आज्ञाएँ खुदी हुई मिली हैं जिनको बौद्धधर्म प्रचारक 'आशोक' की मान रहे थे पर उसपर ठीक छान बीन और इतिहास प्रमाणों से गवेषना करने पर यह सिद्ध हो चुका है कि जो शिलालेख स्थम्भलेख बौद्धधर्म प्रचारक महाराज 'आशोक' के माने जाते थे वे आशोक के नहीं पर सम्राट् सम्प्रति के हैं इस विषय में साक्षर श्रीमान् त्रीभुवनदास लेहरचन्द बड़ौदा वाले ने

एक लेख जैन रजितांक में प्रकाशित करवाया है वह लेख इतना तो उपयोगी तथा अकट प्रमाणों और अनेक दलीलों से परिपूर्ण हैं कि जिसको हम दूसरे भाग में प्रकाशित करावेंगे, पाठक धैर्य रक्खें, थोड़ा ही समय में आपकी सेवा में वह लेख उपस्थित किया जायगा ।

❀ समाप्तम् ❀

ऐतिहासिक सुंदर और सस्ती पुस्तकें

जैन जाति महोदय प्रथम खंड

यदि आप जैन धर्म का सच्चा इतिहास तथा जैन जातियाँ-ओसवाल, पोरवाल श्रीमालादि का प्राचीन इतिहास जानना चाहें तो आज ही आर्डर भेज कर एक कोपी मंगवाइये १००० पृष्ठ ४३ चित्र रेशमी जिल्द होने पर भी प्रचारार्थ मूल्य रु० ४)

ओसवाल कुल भूषण समरसिंह

यदि आपको जैन धर्म और ओसवाल जाति का सच्चा गौरव है तो देरी न करें आज ही मंगवा कर पढ़िए ओसवाल जाति में कैसे कैसे शूरवीर दानी मानी धर्मज्ञपुरुष हो गुजरे हैं इसमें ढाई हजार वर्ष पूर्व की अनेक घटनाएं—पढ़ने से आपकी अन्तर आत्मा में नई रोशनी पैदा होगी मूल्य रु० १।)

शीघ्र बोध भाग १ से २५ तक

यदि आप द्रव्यानुयोग अध्यात्मज्ञान, आत्मज्ञान, तत्वज्ञान खगोल भूगोल जीव, कर्म षट्द्रव्यादि और नय निक्षेप का ज्ञान घर बैठे प्राप्त करना चाहते हो तो आज ही एक पत्र लिख कर मंगवा लीजिये चार पक्की जिल्दों में तैयार है । मूल्य रु० ९)

तत्वार्थ सूत्र हिन्दी अनुवाद

यह दो हजार वर्षों पूर्व आचार्य उमास्वतिजी का रचा हुआ महान् ग्रन्थ हैं जिसमें जैन धर्म के मुख्य मुख्य सब तत्वों का समावेश इतनी सुन्दरता से किया है कि साधारण व्यक्ति भी इसको पढ़ के जैन धर्म के तत्वों को समझ सकता है ४०० पृष्ठ होने पर भी प्रचारार्थ मूल्य ॥)

नय चक्रसार हिन्दी अनुवाद (द्रव्यानुयोग)	मूल्य	।=)
कर्म ग्रन्थ हिन्दी अनुवाद (कर्म विषयिक)	,,	)
जैन जाति निर्णय प्रथम द्वितीयाँक	,,	।)
शुभ मुहूर्त शुकनावली स्वरोदय सूतकादि	,,	=)
व्यवहार समकित के ६७ बोल हिन्दी में विस्तार पूर्वक	,,	-)
द्रव्यानुयोग द्वितीय प्रवेशिका (कर्म व आगम)	,,	=)
जैसलमेर का संघ सचित्र अनेक इतिहास सहित	,,	॥)
मेभर नामो हिन्दी जिसमें वर्तमान शासन का हाल	,,	॥)
नित्य स्मरण पाठशाला जिसमें अनेक विषय पाठ करने	,,	।=)
जैन मन्दिरों के पुजारी (मन्दिरों की हालत)	,,	=)
प्राचीन तीर्थ श्री कापरड़ाजी का इतिहास	,,	।)
जड़ चैतन्य का संवाद (यह खास पढ़ने योग्य है)	,,	=)

श्री रत्न प्रभाकर ज्ञान पुष्प माल से आज पर्यन्त १५० पुस्तकें छपी हैं सूचीपत्र मंगवा के पढ़िये और ज्ञान प्रचार बढ़ाइये ।

मिलने का पता—

श्री रत्न प्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला

मु० फलोदी (मारवाड़)

इतिहास जानने का सरल और सुंदर साधन

प्राचीन इतिहास संग्रह प्रथम भाग—

भगवान् ऋषभदेव से प्रभु महावीर तक तथा महाराजा प्रश्नजित, श्रेणिक, कौणिक, उदाई, नौनन्द, मौर्यचन्द्रगुप्त, बिन्दुसार, आशोक, कुनाण और साम्राट् सम्प्रति का इतिहास बड़े ही सोध एवं खोज से लिखा गया है।

प्राचीन इतिहास संग्रह द्वितीय-भाग—

जिसमें वर्तमान इतिहास कारों ने जो प्राचीन शिला-लेख या स्थम्भ लेख बोध धर्म एवं महाराजा आशोक का सिद्ध किया है पर उसमें बहुत भ्रम है वे तमाम लेख सम्राट् सम्प्रति एवं जैन धर्म्म के हैं इस बात को इतिहास प्रमाणों से अच्छी तरह से सिद्ध कर बतलाया है यदि—

प्राचीन इतिहास संग्रह तृतीय भाग—

जिसमें महामेघबाहन चक्रवर्ति कलिङ्ग पति महाराजा खारबेल का २००० वर्षों पूर्व का शिलालेख और साथ में कलिङ्ग देश का इतिहास है।

प्राचीन इतिहास संग्रह चतुर्थ भाग—

जिसमें भारत और भारत के बाहर जैन धर्म किस प्रकार प्रसरित हुआ था। वह सब इस किताब द्वारा पढ़ कर आपकी आत्मा में गौरव के साथ नई बिजली पैदा होगी। शीघ्रता कीजिये—

पता—श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला,
मु० फलोदी (मारवाड़)

आदर्श प्रेस, केसरगंज अजमेर में छपा